

भारतीय संस्कृति में अन्तर्निहित धार्मिक मूल्य



वीणा रानी तिवारी

रीडर, सुन्दरवति महिला महाविद्यालय, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय.

Authors Short Profile

Bina Rani Tewary is a Reader at Department of Philosophy.



सारांश :

भारतीय संस्कृति मनुष्य को हमेशा प्रेम, सेवा ज्ञान, विवेके, त्याग, मेल की भावना के साथ संसार में जो कुछ भी सुन्दर एवं सत्य दिखाई दे रहा है उसकी ओर अग्रसर करना तथा संकीर्णता से परहेज करना सिखाता है। भारतीय संस्कृति का अर्थ है सभी धर्मों, जातियों तथा ज्ञान-विज्ञान में मेल की भावना की इच्छा पैदा

करना इसलिए यह संस्कृति 'धर्म' को 'धारणात् धर्म' कह कर व्याख्या करता है। मनु के अपने श्रुति में इस संस्कृति को 'मानव धर्म' 'शास्त्र' कहा है। 'अद्वैत' भारतीय संस्कृति की आत्मा है। जीवन में इस तत्व को उत्तरोत्तर अधिक अनुभव करते जाना ही भारतीय संस्कृति का विकास करते जाना है। इस विकास का अध्ययन केवल सामाजिक एवं राजनीतिक सुधारों के संदर्भ में ही नहीं किया जा सकता बल्कि इसका धर्म से भी धनिशठ सम्बन्ध है।

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय संस्कृति में 'धर्म' शब्द का प्रयोग बड़े ही व्यापक तथा विविध अर्थों में हुआ है। 'शब्द विन्यास' की दृष्टि से देखने पर यह शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'धारणकरना' अथवा 'आलम्बन देना' धारण करने के अर्थ में इसका प्रयोग ऐसे गुणों के अर्थ में हुआ है जो धारण करने या अपनाने के योग्य है। 'आलम्बन' करने के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग वस्तुओं के उन आधार भूत अथवा सार गुणों के रूप में किया गया है जिन पर वस्तु आधारित मानी जाती है यानी किसी भी वस्तु का जो मूल या सार तत्व है वही इसका धर्म है। अधिकांशतः 'धर्म' का शब्द प्रयोग निश्चित नियम, व्यवस्था अथवा आचरण सम्बन्धी नियम के अर्थ में हुआ है।

धर्म का प्रतिफल ज्ञान है और ज्ञान का प्रतिफल मोक्ष है। धर्म ज्ञानमोक्ष का यह त्रिकोण ही सांसारिक धर्म, अर्थ, काम मोक्ष नामक पुरुषार्थ का व्याख्याता है। भारतीय संस्कृति में धर्म का दो अर्थों में व्यवहार किया गया है। 1. पुरुषार्थ के अर्थ में, 2. सद्गुण के अर्थ में।

भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थ की चर्चा की गयी है। इन चार प्रकार के पुरुषार्थ की चर्चा इस बात का प्रमाण है कि भारतीय संस्कृति में सांसारिक जीवन की अवहेलना नहीं की जा सकती, परन्तु इसे मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य भी नहीं माना जा सकता क्योंकि सर्वोच्च लक्ष्य है मोक्ष, और मोक्ष की प्राप्ति के लिए मूल साधन है धर्म। धर्म ही काम एवं अर्थ के द्वारा मनुष्य के अन्दर उत्पन्न होने वाले लोभ को नियंत्रित कर उन्हें उचित मार्ग पर चलना सिखाता है। धर्म का सम्बन्ध मनुष्य के नैतिक दायित्वों में कुछ ऐसे हैं जिनका पालन प्रत्येक मनुष्य को बिना किसी भेदभाव के करना है। ऐसे ही कर्तव्यों एवं दायित्वों को साधारण धर्म की श्रेणी में रखा गया है।

मनु स्मृति में साधारण धर्म की चर्चा मिलती है

“धृति, क्षमा दयोऽस्तेय, ऋचमिन्द्रियं निग्रहः,
धी वृथा सत्यम क्रोधो, दशकं लक्षणम्”

इस लोको से यह स्पष्ट है कि धर्म धारण करना, दूसरों के प्रति क्षमा का भाव रखना, संयम बरतना, चोरी नहीं करना, पवित्रता का आचरण करना, इन्द्रियों को नियंत्रण में रखना, ज्ञान, विद्या सत्य तथा अक्रोध- ये दस धर्म के लक्षण हैं। जिनका पालन प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए। मनु की साधारण धर्मों की विशेषता के सम्बन्ध में एस. के. मैत्रा ने कहा है कि इसमें से कोई भी गुण बहुत स्पष्ट तथा भावात्मक रूप में सामाजिक नैतिकता सम्बन्धी गुण नहीं है। प्रत्येक का सम्बन्ध वैयक्तिक नैतिकता तथा वैयक्तिक पूर्णता की प्राप्ति के साथ है।

धर्म का मनुष्य की विवेकशीलता से सम्बद्ध है। 'धर्म' अपनी आपत्ति रहितता से शाश्वत है, नित्य है आपत्ति युक्त 'धर्म' धर्म नहीं हो सकता है। धर्म में प्रवृत्ति का प्रतिफल निश्चयना का उदय और पारमार्थिक ज्ञान का विस्तार होता है। धर्म से आत्मा का जो दर्शन करता है और आत्मा को जो परमात्मा रूप देखता है वही धर्मात्मा है।

प्रश्न उठता है कि धर्म क्या है? वैदिक परम्परा से धर्म वह है जिसके द्वारा मनुष्य को अभ्युदय तथा निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। अभ्युदय से तात्पर्य मनुष्य का नैतिक उत्कर्षा तथा सुख और समृद्धि की प्राप्ति, इसका दूसरा अर्थ है स्वर्ग की प्राप्ति। निःश्रेयस का अर्थ है मोक्ष। ऋषिऋषि के अनुसार धर्म जगत की स्थिति का कारण है और मनुष्य को अभ्युदय और निःश्रेयस प्रदान करने वाला है अतः सभी वर्ण और आश्रम के

लोगों को धर्म पालन करना चाहिए। सभी धर्मों की यह मान्यता है कि मनुशय का वास्तविक कल्याण धर्म के पालन से ही सम्भव है।

मनुशय के अस्तित्व और उसकी संरचना के विशाय में भी धर्म की दृशिट अत्यन्त सूक्ष्म तथा गंभीर है। मनुशय केवल तृतीय ओर मन से युक्त प्राणी नहीं है उसके अन्दर एक ऐसी सत्ता भी है जो काल से ग्रस्त नहीं होता और मृत्यु के बाद भी जिसका अस्तित्व रहता है। अतः मानव का सम्बन्ध सिर्फ इस लोक में नहीं बल्कि परलोक से भी है जिसकी प्राप्ति उसके जीवन का अन्तिम लक्ष्य मनुशय के नैतिक तथा सामाजिक जीवन से भी नैतिकता स्थापना तथा विकास पर सभी धर्मों ने अत्यधिक जोर दिया है। बिना नैतिक विकास के जीवन की पवित्रता सम्भव नहीं है। धर्म का सार तत्व यही है कि मनुशय अपने वैयक्तिक तथा सामाजिक और सार्वजनिक जीवन में नैतिकता के उच्च धरातल को प्राप्त करे जिससे लोक कल्याण सम्भव हो।

भारतीय संस्कृति में मानव सेवा को सबसे बड़ा धर्म माना गया है। मानव सेवा में दलित मानवता को ऊपर उठाने और उसके प्रति स्नेह, दयालुता इत्यादि की भावनाओं को अभिव्यक्त करने पर सबसे अधिक बल दिया गया है। समकालीन भारतीय दार्शनिक टैगोर, विवेकानन्द और गांधी के विचारों में दरिद्र नारायण की सेवा के महत्व के स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं। इनलोगों के अनुसार ईश्वर को जीवन में स्वीकार करने को ही धर्म कहते हैं। ईश्वर को स्वीकार करने का अर्थ है कि हम अपने हृदय में सत्य, प्रेम, करुणा विवके जो भारतीय संस्कृति की देन है उसको अधिक से अधिक स्थान देकर अपनी संकीर्णता, द्वेषा भावनाओं, अज्ञान और अविवेक तथा उनसे उत्पन्न होने वाले क्रोध, लोभ और काम, आदि सारे मनोवेगों का परित्याग कर दें। गांधी जी के अनुसार “धर्म वह है जो मनुशय की प्रकृति को बदल दे। अन्तस को सत्य से बांध दे, और जो हमेशा पुद्धिकरण करता रहे। धर्म का अर्थ का अर्थ है सृशिट के नैतिक ासक के नियमन में विश्वास।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में नैतिकता धर्म तथा दर्शन इन सबों में कोई स्पष्ट भेद नहीं किया गया है। व्यक्ति के अपने आप के प्रति कर्तव्य, ईश्वर अथवा देवी देवताओं के प्रति जो कर्तव्य होते हैं, वे सभी नैतिकता के अन्तर्गत चले आते हैं, इसी अर्थ में कहा गया है कि

“आचारः परमो धर्मः”

स्वाभाविक रूप से प्रश्न यह उठता है कि धर्म का आधार क्या है? धर्म की परिभाषा यह है कि श्रुतियों और स्मृतियों के द्वारा विहित कर्म की धर्म है। इससे स्पष्ट होता है कि धर्म का मूलधार वेद है।

गौतधर्म सूत्र में कहा गया है- “वेदो धर्म मूलम”
वशिष्ट धर्म सूत्र में कहा गया है- “श्रुति स्मृति विहित धर्म”

हिन्दु परम्परा में ऐसी आस्था है कि धर्म की रक्षा खुद ईश्वर करते हैं। जब-जब धर्म का हास होता है और विश्व की व्यवस्था कुंठित होती है तो खुद ईश्वर इस विश्व में अवतरित होकर अधर्म का विनाश करते हैं तथा धर्म की प्रतिस्थापना करते है।

आज आधुनिक युग में विज्ञान के चकाचौंध में फँसकर मनुशय अपनी मानवीय मूल्यों, मर्यादाओं तथा मान्यताओं को भूलकर जा रहा है। वेद में कहा गया है -

“एकम् सत् विप्रा बहुधा वदन्ति”

संसार में नाम रूप की माया बहुत प्रबल है और यही माया संसार के धार्मिक युद्ध का मूल कारण है।

संदर्भ सूची :

- 1.संस्कृति के चार अध्याय - श्री दिनकर
- 2.भारती विद्या - प्रियंवदा सिन्हा
- 3.महात्मा गांधी का दर्शन - डॉ. धीरेन्द्र मोहन दत्त